शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

सामाजिक समस्याएँ और 'हंस' की वैचारिक बहसें

डॉ.संजीव कुमार
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

शोध संक्षेप

'हंस' हिंदी की लोकप्रिय पत्रिका रही है। इसकी लोकप्रियता का कारण केवल साहित्यिक रचनाएँ ही नहीं रही हैं बल्कि इसमें सामाजिक समस्याओं पर लगातार होने वाली बहसों ने भी इस पत्रिका का मान बढ़ाया है। राजेंद्र यादव ने संपादन के माध्यम से 'हंस' पत्रिका के उसी गौरव को बनाए रखा, जिसे प्रेमचंद ने अर्जित किया था। राजेंद्र यादव ने समय-समय पर जातिवाद, आरक्षण, नारीवाद, साम्प्रदायिकता, हिंदी में साहित्यिक सूखेपन, विश्वविद्यालयों में साहित्य की दशा और तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं को बहसों के माध्यम से उठाया। इन बहसों में राजेंद्र यादव देश के बौद्धिकों से विभिन्न मुद्दों पर चर्चाएं करवाते थे। प्रस्तुत शोध आलेख में इन्हीं बहसों और चर्चाओं केआलोक में 'हंस' पत्रिका की भूमिका की चर्चा की गई है ।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की बहुप्रतिष्ठित पत्रिका 'हंस' के सामाजिक सरोकार का दायरा व्यापक और गंभीर रूप में स्थापित रहा है। सन 1986 में राजेन्द्र यादव ने जब संपादक के रूप में 'हंस' को शुरू करने की योजना बनाई तब हिंदी जगत में प्रेमचंद के समय की तुलना में यह कठिन नहीं था, लेकिन इस अर्थ में यह मुश्किल अवश्य था कि जिस पत्रिका का संपादन स्वयं प्रेमचंद ने किया हो वहाँ उसी नामकरण के साथ संपादन करना आरंभ से ही सामाजिक जिम्मेदारियों को बढ़ा देता है। 'हंस' पत्रिका के आरंभ से ही संस्थापक प्रेमचंद 1930 का पहले पृष्ठ पर अंकित होना यह स्पष्ट कर देता है कि राजेन्द्र यादव उन्हीं नीतियों पर चलने की योजना बना रहे थे, जिन नीतियों का निर्माण प्रेमचंद ने किया था।

'हंस' कथा साहित्य की भारतीय पत्रिका नामक अप्रकाशित दस्तावेज जिसे 'हंस' की योजना का मूल दस्तावेज माना जा सकता है, के अध्ययन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि राजेन्द्र यादव 'हंस' को प्रेमचंद की परंपरा से जोड़ते हुए इसे अधिक से अधिक व्यापकता प्रदान करने के पक्ष में रहे हैं।

इस योजना में राजेन्द्र यादव ने पत्रिका के लगभग सभी आवश्यक तत्वों पर विचार करते हुए यह भी स्पष्ट किया कि वे इसे समाज के सभी पक्षों से जोड़कर आगे बढ़ाने के पक्ष में हैं। वे कहते हैं कि हिंदी और भारतीय कहानी के आधुनिकतम विकसित स्वरूप को प्रस्तुत करने के साथ-साथ 'हंस' पाठकों के लिए वैचारिक और कलात्मक प्रशिक्षण का पत्र भी बन सके, हमारा सारा प्रयास इसी दिशा में रहेगा। हम ऐसी संस्कृति का प्रसार चाहते हैं जो पुराणपंथी, अंधविश्वास नहीं, अधिक खुली, मुक्त और वैज्ञानिक धरातल दे सके। इसके लिए सबसे बड़ी जरुरत है बौद्धिक जागरूकता और वैचारिक स्वतंत्रता की और 'हंस' इस दृष्टि से सिर्फ़ एक पत्रिका न रहकर आंदोलन भी बन सके, हम यह आकांक्षा भी रख सकते हैं।"[1]

हंस की वैचारिक बहसें

इस तरह की योजना से यह आसानी से समझा जा सकता है कि राजेन्द्र यादव 'हंस' की गरिमा को अधिक से अधिक गंभीरता से लेते हैं। 'हंस' को आन्दोलन के रूप में प्रतिष्ठित करने की योजना उनकी संपादकीय प्रतिबद्धता को उजागर और स्पष्ट कर देता है। यही कारण है कि 'हंस' पत्रिका के मूल में जहाँ एक ओर कहानियों की रचनात्मक ऊँचाई देखने को मिलती है वहीं दूसरी ओर वैचारिक बहसें भी सामाजिक समस्याओं से टकराती हैं। इन बहसों में मुख्य रूप से जो विषय उठाए गए हैं उनका संबंध हमारी वर्तमान समस्याओं से प्रत्यक्ष रूप में जुड़ा रहा है। साम्प्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता और बहुसंख्यकवाद हिंदी प्रदेश का वैचारिक संकट, स्त्री, दलित और दलित स्त्री, आरक्षण, सामाजिक न्याय और बुद्धिजीवी, सैक्स, जनवाद और अश्लीलता, गांधी बनाम आंबेडकर, नई कहानी की पहली कृति भेड़िये, रचनात्मकता का सूखापन तथा मीडिया की स्वायत्ता जैसे वैचारिक विषयों पर गंभीरतापूर्वक चर्चाएँ चलाई गई। इन बहसों की सार्थकता इस अर्थ में सबसे अधिक रही कि पहली बार 'हंस' के मंच से साहित्यकारों ने भारतीय सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर खुलकर चर्चाएँ की। निश्चित रूप से इन परिचर्चाओं का श्रेय 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव को जाता है। एक संपादक के रूप में उन्होंने अपने संपादकीय आलेखों के माध्यम से बार-बार साहित्यकारों को इन गंभीर विषयों पर बहस के लिए आमंत्रित किया। इसका परिणाम यह निकला कि हिंदी के लगभग सभी साहित्यकारों ने इन विषयों पर जमकर चर्चाएँ की। हालाँकि कई विषयों पर लेखकों ने संपादक राजेन्द्र यादव की मान्यताओं का विरोध भी किया है। इस तरह विरोध और सहमति की आजादी तथा अभिव्यक्ति की लोकतांत्रिक व्यवस्था के कारण ही 'हंस' पत्रिका को वह ऊँचाई प्राप्त हुई जो अक्सर पत्रिकाओं के लिए गर्व की बात मानी जाती है। भारत की संघर्षशील जाति और राजनीति से संबंधित नेता मायावती ने जब राष्ट्रपिता गाँधी द्वारा दलितों को हरिजन कहे जाने का विरोध किया तब 'हंस' में गांधी बनाम आंबेडकर विषय पर जोरदार बहसें शुरू हुई इस बहस में अनेकों विद्वानों ने अपने विचार प्रतिपादित किए जिनमें अभय कुमार दुबे, दया पवार, राजकिशोर, हेमंत प्रसाद दीक्षित, असीम कुमार आँसू, हृषिकेश तथा डॉ. योगेन्द्र कुमार मुख्य थे। इन बहसों की सार्थकता इस अर्थ में अधिक है कि बहुत ही सरल ढंग से गाँधी और आंबेडकर के विचार पाठक तक संप्रेषित होते हैं। जैसे कि प्रसिद्ध पत्रकार राजकिशोर ने इस बहस में स्पष्ट किया कि "गांधी किस बात के प्रतीक बन चुके हैं, इसकी सूचना इस बात से मिलती है कि मायावती के प्रसंग में गाँधी का बचाव भारतीय जनता पार्टी के नेताओं ने भी किया। भाजपा को गाँधी से कितना प्रेम है इस पर प्रकाश डालने की जरुरत नहीं है। राष्ट्रीय स्वयं संघ के लोग उन्हें राष्ट्रपिता नहीं प्रातः स्मरणीय मानते हैं, फिर भी दिन-रात उनकी कुसेवा करते रहते हैं। स्पष्टतः गाँधी से उनका झगड़ा सवर्ण हिन्दू समाज का भीतरी झगड़ा है, इसके बाहर वे गाँधी का भी बचाव करेंगे और नेहरु का भी। उनकी इस कोशिश से भी दलितों की भावना पुष्ट हुई होगी कि वे एक अलग सामाजिक वर्ग हैं तथा उन्हें इसी रूप में आचरण करना चाहिए।"[2]

इस तरह हम देखते हैं कि इन बहसों में हमारे पूर्व के क्रांतिकारी विचारकों के सभी सामाजिक सरोकारों से संबंधित विचार अधिक खुलकर हमारे

समक्ष प्रस्तुत होते हैं। सकारात्मक पहलुओं के बावजूद इन बहसों की सीमाओं को भी दरकिनार नहीं किया जा सकता है। आम तौर पर जिस तरह यह देखने को मिलता है कि अक्सर इस तरह की बहसों में लोग अपना एक पक्ष बना लेते हैं और उसके उपरांत एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करने पर उतारू हो जाते हैं। ठीक उसी तरह 'हंस' के विचारकों में भी इन कमियों को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। स्त्री दलित और दलित स्त्री विषय पर हुई बहस में तुम्हारे गले में यह किसकी आवाज है उमा भारती ? शीर्षक से लिखे अपने संपादकीय आलेख में जब राजेन्द्र यादव स्त्री और दलित का एक रूपक तैयार करते हुए कहते हैं कि "सही है कि शूद्रों की तरह औरत (अछूत) नहीं है, वह हमारे बीच और हममें से एक है और कुछ निर्णायक क्षणों या कक्षों और बेहद पवित्र पूजा अनुष्ठानों के सिवा उसे सब कही होने की छूट है। मगर जो चीज उसे शूद्र के साथ रखती है वह है उसकी देह जो मूलतः अपवित्र है।"[3]

यहाँ पर मृदुला गर्ग और अन्य लेखिकाओं ने राजेन्द्र यादव के विचारों से अपनी असहमति अवश्य दर्ज की है लेकिन ये असहमतियां तार्किक होने के साथ-साथ आरोप-प्रत्यारोप की स्थिति को भी प्राप्त हो जाता है। इसी क्रम में जब नीलम कुलश्रेष्ठ, मृदुला गर्ग के विचारों का पक्ष लेतीहैं तब पक्ष के अतिआग्रह स्वरूप में वे इस बात को भी रेखांकित करने से नहीं चूकती हैं कि स्त्री को दलित से जोड़कर देखना उसका अपमान करने जैसा है। ऐसे कुछेक नकारात्मक बिन्दुओं के बावजूद कुछ संपुष्ट वैचारिक धरातल भी देखने को मिलता है। प्रभा खेतान और डॉ. मीनाक्षी के विचारों से इस धारणा को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। डॉ. मीनाक्षी सखी कहती हैं कि वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में उत्पादन तकनीक और संचार क्रांति के कारण हमारे आर्थिक-राजनैतिक ढांचें में उथल-पुथल हो रही है। परंपरागत सांस्कृतिक ढांचें ध्वस्त हो रहे हैं। देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ टूट चूकी है। आर्थिक और सामाजिक रूप से असुरक्षा से ग्रस्त लोग फिर से जाति-धर्म के परंपरागत दायरे में सुरक्षा तलाश रहे हैं। बाजार के माध्यम से वे स्त्री और दलित सशक्तिकरण करने का दावा पेश कर रहे हैं।"[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बदलते तकनीकी युग के आधार पर भी विचारक इन महत्वपूर्ण विषयों को रेखांकित कर रहे हैं। इन विचारों की गंभीरता का पता इस बात से भी लगाया जा सकता है कि इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर प्रसिद्ध पुस्तक 'प्री बिल्डिंग द लेफ्ट' में मारटा हार्नेकर ने तकनीक और सामाजिक संबंधों पर गंभीरता से विचार किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक में विचार करते हुए यह प्रश्न भी उठाया है कि How does the introduction of new technologies into the labour process and into the whole economic process affect the technical and social relations of production and those of distribution and consumption?"[5]

इस आधार पर जब हम गहनता से विचार करते हैं तब यह स्पष्ट हो जाता है कि 'हंस' द्वारा चलायी गयी इन बहसों में गंभीर सैद्धांतिकी के तत्व भी मौजूद रहे हैं। हालांकि 'हंस' के इन बहसों पर आधारित पुस्तक 'हंस' के विमर्श की भूमिका में विभास वर्मा मानते हैं कि सैद्धांतिकी के स्तर पर 'हंस' में वह उत्साह कम दिखाई देता है। वे लिखते हैं कि "इस क्षेत्र में 'हंस' का उत्साह ज्यादा नहीं दिखा, क्योंकि यह साफ़ तौर पर देखा जा सकता है कि जटिल सैद्धांतिक बहसों के

प्रति 'हंस' का उत्साह थोड़ा मंदा ही रहा है। उसकी बहसें अधिकतर व्यावहारिक बहसें रही हैं।"[6]

जहाँ तक सैद्धांतिकी बहसों का मसला है वहाँ ध्यान देने योग्य बातें यह है कि 'हंस' में इन विचारों को पचाकर पेश किया गया है और यही कारण है कि यह सरलतापूर्वक पाठकों के लिए ग्राह्य बन सका है । इसका दूसरा कारण यह भी है कि स्वयं संपादक राजेन्द्र यादव ने बार-बार अपने आलेख में विचारकों से यह अपेक्षा व्यक्त रखी है कि बहस में सांख्यिकी अथवा रिपोर्ट को आधार न बनाकर संवेदना के धरातल पर बात की जाय। आरक्षण, सामाजिक न्याय और बुद्धिजीवी जैसे गंभीर विषयों पर हुई बहस में भी इन तत्वों को देखा जा सकता है। राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, शैलेश मटियानी, गिरिराज किशोर, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे, पंकज बिष्ट, विष्णु नागर, संजीव, पुरुषोत्तम अग्रवाल आदि अनेक विचारकों ने इसी आधार पर मंडल आयोग के विरोध में हो रहे प्रतिक्रियावादी आन्दोलन पर अपने विचार व्यक्त किए। उदाहरण स्वरूप डॉ.पुरुषोत्तम अग्रवाल के विचारों को देखा जा सकता है। वे लिखते हैं कि "सवाल यह है कि क्या अब भी सामाजिक और राजनीतिक सत्ता प्रतिष्ठान समस्या के गहरे सवालों से जूझ पाएगा? क्या अब भी इस रुग्ण संस्कृति की कोई स्वस्थ आलोचना हमारा बौद्धिक वर्ग विकसित करेगा ? क्या अब भी कोई ऐसा हस्तक्षेप संभव करने की बात सोची जाएगीए जो न्याय को पुनः परिभाषित करे ? जो असंवाद की बर्फ़ तोड़े और जो जीवन को सिर्फ़ निजी स्वार्थ से नहींए व्यापक स्वार्थ से परिभाषित करे।"[7]

स्पष्ट है कि यहाँ लेखक युवाओं के संवाद के प्रति बढ़ती अनास्था और इसके विकल्प में हिंसा और आत्मदाह को अपनाने से दुखी और निराश होकर आहत मन से प्रश्न करता है। यहाँ वह सैद्धांतिकी पर बहस की आवश्यकता इसलिए महसूस नहीं करता क्योंकि उसके घर में आग लगी है और वह उस आग में जल रहा है। राजेन्द्र यादव ने जिन बिन्दुओं के आधार पर साहित्यकारों को इस बहस में उतरने के लिए भूमिका तैयार की थी ये प्रश्न उन्हीं भूमिकाओं के आधार पर किये गए हैं। यही कारण है कि ये प्रश्न पाठक के मन मस्तिष्क पर संवेदना की गहरी छाप छोड़ता है।

इस तरह हम देखते हैं कि 'हंस' पत्रिका में चलाए जा रहे विमर्श पाठकों के लिए सुपाच्य रूप में प्रस्तुत किए जाते रहे। साहित्यिक कृतियों पर चल रही बहसों को भी इन्हीं आधारों पर जांचा-परखा जा सकता है। भुवनेश्वर की कहानी भेड़िये पर डॉ.शुकदेव सिंह की टिपण्णी भी प्रकाशित की गयी थी जिसका शीर्षक था 'नई कहानी की पहली कृति' जिसमें उन्होंने प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह के साथ हुए अपने संवाद का जिक्र किया है। प्रो. नामवर सिंह को यह विश्वास नहीं था कि 'भेड़िये' हिंदी की ही कहानी है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं कि "उन्होंने अपने मित्र नगेन्द्र सिंह की ओर मुड़कर देखा और मेरे बजाय उन्हीं से पूछना बेहतर समझा, क्या 'भेड़िये' हिंदी की कहानी है ? उत्तर मैंने ही दिया, जी हाँ, 'भेड़िये' हिंदी की पहली सशक्त कहानी है जिसे पढ़े और समझे बिना लेखन और आलोचन दोनों स्तरों पर घटिया, भावुक और अमूर्त रचनाओं को प्रतिष्ठा मिलती रही है।"[8]

इस तरह भुवनेश्वर की कहानी 'भेड़िये' पर इस बात को लेकर बहस छिड़ जाती है कि यह नई कहानी की पहली कृति है या नहीं। लेकिन इसके साथ ही भेड़िये कहानी के सभी तत्वों पर विस्तार

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

से चर्चा भी होती है और अंत में डॉ.शुकदेव यह मानते हैं कि भेड़िये के बहाने भुवनेश्वर पर पढने-लिखने का माहौल बनाना था। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि वे अपने इस उद्देश्य में सफल हुए। इस तरह हम देखते हैं कि 'हंस' अपने विमर्श को एक अनूठे ढंग से चलाता है। समाज में लगातार हाशिएकरण की नीतियों का इस अनूठे ढ़ंग से सामना करना ही 'हंस' के महत्व को बढ़ाता है। मसला साहित्यिक कृतियों के सन्दर्भ में हो अथवा राजनैतिक-सांस्कृतिक संदर्भ में 'हंस' की बहसों के मूल में मानवीय संवेदना की पृष्ठभूमि को आसानी से महसूस किया जा सकता है।

निष्कर्ष

हम यह कह सकते हैं कि 'हंस' के माध्यम से चलाये जा रहे विमर्श सामाजिक समस्याओं और उसके कारणों के प्रति सतर्क करता है। धर्म, अंधविश्वास, जातिवाद, अल्पसंख्यक-बहु संख्यक जैसे अनेक विषयों से संबंधित समस्याओं पर विस्तार और व्यापकता से चर्चा करते हुए 'हंस' अपनी सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में ऐसी भूमिका स्थापित करती है जो निश्चित रूप से पत्रिकाओं के लिए मानक के रूप में प्रतिष्ठित रहेगी। हिंदी साहित्य में इस प्रतिष्ठा के लिए एक प्रतिबद्ध संपादक के रूप में राजेन्द्र यादव, जिन्होंने इसकी नींव में ही इसे सिर्फ़ एक पत्रिका के रूप में नहीं बल्कि एक आंदोलन के रूप में देखा था, उस रूप को अपने जीवन काल में स्वरूप प्रदान करने के लिए हमेशा याद किए जाएंगे।

संदर्भ ग्रन्थ

1 'हंस' कथा साहित्य की भारतीय पत्रिका, राजेन्द्र यादव, अप्रकाशित, पृष्ठ 6-7

2 गाँधी जी श्रेष्ठ थे तो ? राजकिशोर. 'हंस' के विमर्श 2, संपादक राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 52

3 तुम्हारे गले में किसकी आवाज है, उमा भारती ? राजेन्द्र यादव, 'हंस', संपादकीय अंक मार्च 1993, पृष्ठ 6

4 दोहरी मार झेलती दलित स्त्री, डॉ. मीनाक्षी सखी, 'हंस' के विमर्श-1, संपादक राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण पृष्ठ 192

5 Rebuilding the Left, Marta Harnecker, Daanish Books, firist reprint-November 2009, Pg 40।

6 विभास वर्माए 'हंस' के विमर्शए राजेन्द्र यादवए वाणी प्रकाशनए प्रथम संस्करणए देखें भूमिका।

7 आत्मदाह की न्याय चेतना, डॉ.पुरुषोत्तम अग्रवाल, 'हंस' के विमर्श 1, संपादक राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन प्रथम संस्करण, पृष्ठ 231

8 नई कहानी की पहली कृति भेड़िये, डॉ.शुकदेव सिंह 'हंस', मई, 1991, संपादक राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 14